इकाई 10 पश्चिमी तथा मध्य भारत

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

भारतीय राजनीति के परंपरागत अध्ययन में शासक वंशों की वंशावली एवं उनके शासन के तिथिक्रम पर अधिक बल दिया जाता है। राजनीति में जो भी परिवर्तन हुए उनको शासक वंश में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप मान लिया गया। राजनीतिक व्यवस्था में घटित होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करने की इस पद्धति को अब अपूर्ण माना जाता है। अभी हाल के वर्षों में राजनीति पर जो शोध किये गये हैं उनके अंतर्गत प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय राजनीति का विश्लेषण उन संभावित प्रक्रियाओं के दृष्टिकोण से करने का प्रयास किया गया है जो उस समय कार्यरत थीं। आजकल राज्य निर्माण, राजनीति का ढांचा, सत्ता का चरित्र एवं राजनीतिक नियंत्रण जैसे विषयों के अध्ययन पर बल दिया जाने लगा है। उपमहाद्वीपीय स्तर पर सामान्यीकरण करने के लिए यह आवश्यक है कि इस तरह के विषयों पर सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाए। इस इकाई में हमें पश्चिमी तथा मध्य भारत की क्षेत्रीय राजनीतिक प्रणाली के उद्‌भव एवं विकास की जानकारी प्राप्त होगी। इस क्षेत्र के अंतर्गत आधुनिक राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश के अधिकतर भू-भाग आते हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :

- आप बता सकते हैं कि विभिन्न राजनीतिक शक्तियों का उदय कैसे हुआ;
- राजनीतिक संगठन के ढांचे के साथ-साथ आपको राजनीतिक सत्ता के वितरण की प्रकृति का ज्ञान हो जाएगा; और
- आप राजनीतिक शक्तियों के निर्माण के प्रतिमानों एवं उनके सुदृढ़ीकरण का विश्लेषण कर सकते हैं।

10.1 प्रस्तावना

इस वास्तविकता को समझते हुए कि भारत के बहुत से भागों में होने वाले क्षेत्रीय राजनीतिक परिवर्तनों का अध्ययन गहराई से नहीं किया गया है, इसीलिए उपमहाद्वीपीय स्तर पर इन परिवर्तनों का सामान्यीकरण करने के लिए यह आवश्यक है कि इन पर आगे शोध किया जाए। क्षेत्रीय राजनीतिक परिवर्तनों का अध्ययन करना निम्नलिखित कारणों से और भी महत्त्वपूर्ण है :

1) इन क्षेत्रों में सत्ता के केन्द्रों में जल्दी-जल्दी बदलाव आते थे।
2) नवीन राजनीतिक प्रणालियों का निर्माण एक अनवरत प्रक्रिया थी।

पश्चिमी तथा मध्य भारत में हमें स्थानीय राज्यों के उदय के नवीन उदाहरण देखने को मिलते हैं। उदाहरणार्थ, गुर्जर प्रतिहार, गुहिला, परमार, चाहमान, कलचुरी एवं चन्देल जैसे राजपूत वंशों ने गुप्तकाल के बाद एवं दसवीं सदी ई. के बाद के काल में पश्चिम तथा मध्य भारत में पैदा हुई राजनीतिक अनिश्चिताओं का लाभ उठाया। कई शताब्दियों तक विशेषकर सन् 800 ई. से 1300 ई. तक राजनीतिक क्षीतिज पर उनका दबदबा कायम रहा। जिस तरह से इन राजपूत वंशों की उत्पत्ति के विषय में कुछ स्पष्टता से नहीं कहा जा सकता है उसी तरह मे उन राजनीतिक प्रक्रियाओं के विषय में भी कुछ निश्चित नहीं है जिनके द्वारा इन राजपूत शक्तियों ने पुराने राजवंशों का स्थान ग्रहण किया। इसके बावजूद

भी राजनीतिक सत्ता के वितरण की कुछ आवश्यक विशेषताओं का उल्लेख करने का प्रयास किया गया है। इस क्षेत्र की राजनीति में उत्तरी तथा पूर्वी भारत की राजनीति से कुछ भिन्नता थी। इस क्षेत्र की राजनीति पर विशेषकर कुछ भागों में राजकुल का प्रभाव था (देखें इकाई 8.3.3)। इन भागों में भी नौकरशाही के ढांचे सहित प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों का विसर्जन नये प्रकार के भू-स्वामित्व पर आधारित था इसने सामंतीय राजनीतिक व्यवस्था के मार्ग को प्रशस्त किया।

10.2 राजपूत वंशों का उदय

सन् 712-13 ई. में अरबों ने सिंध एवं मुल्तान पर आक्रमण किया। आगामी 25 वर्षों में उन्होंने मारवाड़, मालवा तथा भड़ौंच को रौंद डाला और भारत के अन्य भागों पर भी उनका खतरा मंडराने लगा। उनके इन आक्रमणों ने पश्चिमी भारत तथा दक्खन के राजनीतिक नक्शे में होने वाले परिवर्तनों में काफी योगदान दिया। राष्ट्रकूट एवं अब राजपूत कहे जाने वाले अनेक राजवंश इस काल में सामने आये। इन वंशों का नाम इससे पूर्व के सभय में सुनायी नहीं पड़ता। इन वंशों ने इस क्षेत्र की राजनीति में सन् 800 ई. से महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी शुरू कर दी थी। परमार एवं चाहमान जैसे सामान्य राजवंश बहुत सी कठिनाइयों को पार करने के बाद गुर्जर प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट जैसी बड़ी शक्तियों के अंतर्राज्यीय संघर्षों के समय महत्त्वपूर्ण हो गये (देखें इकाई 8.2.1)।

राजपूतों का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय एक घटना प्रतीत होती है। लेकिन प्रारंभिक राजनीतिक घटनाक्रम के विश्लेषण से स्पष्ट है कि राजपूतों का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय अचानक घटित होने वाली घटना न थी। इन राजवंशों का उद्भव विद्यमान राजनीतिक ढांचे के पदानुक्रम में ही हुआ था। इसलिए इनके उद्भव को संपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में ही समझा जाना चाहिए।

10.3 उत्पत्ति की कथाएं : उनके राजनीतिक परिणाम

राजपूत वंशों के उत्पत्ति की समस्या काफी जटिल एवं विवादास्पद है। राजपूतों के गोत्र निर्माताओं ने उनको चन्द्रमा (सोमवंशी) से संबंधित क्षत्रिय बताया जबकि कुछ ने पुराने महाकाव्यों के आधार पर उनका संबंध सूर्यवंशियों से जोड़ा। सूर्य से उनकी उत्पत्ति की कल्पना करने का भावार्थ यह था कि कलयुग में इन क्षत्रियों की उत्पत्ति मलेच्छों (विदेशियों) का सर्वनाश करने के लिए हुई। राजस्थानी भाटों और वंशावली निर्माताओं ने उनकी उत्पत्ति को आग से बताया (अग्निकुल)।

अग्निकुल : जिसका रचियता एक दरबारी कवि था — की कहानी के अनुसार परमार वंश के संस्थापकों की उत्पत्ति वशिष्ठ मुनि के माउंट अबू पर्वत पर स्थित अग्निकुंड से हुई थी। वशिष्ठ के अग्निकुंड से जिस व्यक्ति की उत्पत्ति हुई उसने वशिष्ठ मुनि की इच्छानुसार वरदान देने वाली गाय को मुनि विश्वामित्र से शक्ति के बल पर प्राप्त कर लिया और उसको पुनः वशिष्ठ मुनि को लौटा दिया। मुनि वशिष्ठ ने उस व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए कार्यों के अनुरूप परमार अर्थात दूसरे का वध करने वाला नाम प्रदान किया। इस व्यक्ति से उत्पन्न होने वाली जाति के लोगों को सदगुण संपन्न राजाओं द्वारा श्रेष्ठ माना जाने लगा। परमार राजाओं के अभिलेख भी उनकी उत्पत्ति को मुनि वशिष्ठ के माउंट अबू पर्वत पर स्थित अग्निकुंड से ही घोषित करते हैं।

राजस्थानी भाटों ने इस विवरण में कुछ बढ़ोत्तरी करते हुए कहा कि न केवल परमारों की अग्नि से उत्पत्ति हुई थी बल्कि प्रतिहारों, गुजरात के चौलुक्यों एवं चाहमानों की उत्पत्ति भी अग्नि से हुई। चाहमानों की उत्पत्ति को अग्नि से बताते हुए भाट कथाओं में कहा गया कि अगस्तय मुनि एवं अन्य दूसरे मुनियों ने माउंट अबू पर्वत पर एक विशाल आहुति यज्ञ का प्रारंभ किया। राक्षसों ने मलिन वस्तुओं को फेंक कर इस यज्ञ को अपवित्र करने का प्रयास किया। वशिष्ठ मुनि ने अग्निकुंड से तीन योद्धाओं प्रतिहार, चालुक्य एवं परमार को उत्पन्न किया। लेकिन इन तीनों में से कोई भी राक्षसों को दूर न रख सका। फिर वशिष्ठ ने एक नये अग्नि कुंड का निर्माण किया और इससे हथियारों से लैस एक योद्धा का जन्म हुआ। इस योद्धा ने राक्षसों को पराजित कर दिया। ऋषियों ने उसको चाहमान नाम दिया।

अग्निकुल की यह कथा भाट कवियों की कल्पना मात्र से अधिक कुछ नहीं है। अपने आश्रयदाताओं की उत्तम वंशावली की तलाश में उन्होंने परमारों की अग्नि उत्पत्ति की कहानी को रचा। उन्होंने सोचा यदि इस कथा का और विस्तार किया जाए तब वे चाहमानों की उत्पत्ति की अधिक शानदार व्याख्या कर सकते हैं।

यदि उत्पत्ति की समस्या पर विचार किसी व्यक्तिगत वंश के आधार पर करने की अपेक्षा इसकी संपूर्णता में किया जाए तब इसका राजनीतिक महत्त्व समझ में आता है। नवीन सामाजिक समूहों के द्वारा स्वयं को क्षत्रिय बताने का दावा प्रारंभिक मध्यकाल में काफी प्रचलित हो गया था। क्षत्रिय स्तर, उन बहुत से प्रतीकों में से एक था जिसके द्वारा नव उदित सामाजिक समूहों ने अपनी नई शक्ति को वैधता प्रदान करने का प्रयास किया। प्रारंभिक मध्य कालीन एवं मध्यकालीन राजपूत वंश मिश्रित जाति का प्रतिनिधित्व करते थे। इन वंशों में भू क्षेत्रों के छोटे प्रमुख थे और इन्होंने धीरे-धीरे राजनीतिक प्रमुखता को प्राप्त कर लिया। प्रतिहारों, गुहिलों, चाहमानों एवं अन्य वंशों के द्वारा प्राप्त की जाने

वाली राजनीतिक शक्ति और सम्मानीय सामाजिक स्तर (अर्थात क्षत्रिय राजकुल) प्राप्त करने की दिशा में उनके प्रयास के बीच एक सहज संबंध था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इन वंशों ने स्वयं को प्राचीन क्षत्रियों से जोड़ने का दावा राजसत्ता को प्राप्त करने के काफी लंबे समय बाद किया। सबसे पहले हम गुर्जर प्रतिहारों के उदाहरण का उल्लेख कर सकते हैं। तिथिक्रम के अनुसार गुर्जर प्रतिहार राजपूत वंशों में ऐतिहासिक रूप में सबसे पहले का महत्त्वपूर्ण वंश था। नौवीं सदी ई. के अंत में राजा भोज प्रथम द्वारा जारी किये गये एक अभिलेखानुसार वे स्वयं को सूर्य वंश का मानते है और वे रामायण काव्य के नायक राम के भाई लक्ष्मण को अपने परिवार का पूर्वज बताते हैं। लेकिन गुर्जर-प्रतिहारों के अभिलेख राजा भोज के चरमोत्कर्ष के दिनों तक उनकी उत्पत्ति के प्रश्न पर कुछ भी नहीं बताते। सूर्य वंश की शिलालेख परंपरा तिथि क्रमानुसार उस समय से जुड़ी है जबकि गुर्जर प्रतिहार एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति थे। इस तरह से यह परंपरा साम्राज्य प्रधानता की स्थिति का महाकाव्यों के गौरवमय युग के साथ संपर्क स्थापित करने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करती है। परमार एवं चाहमान जैसे वंशों की उत्पत्ति को भी क्षत्रियों से संबंधित करने की परंपरा का उदय इन शक्तियों के प्रारंभिक काल में नहीं हुआ था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राजपूत वंश में प्रवेश केवल राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने पर ही हो सकता था। ये नवीन राजनीतिक शक्तियां अपनी वैधता को सिद्ध करने के लिए अपने-अपने वंशों को काल्पनिक भूतकालीन क्षत्रीय परंपरा के साथ जोड़ने का दावा कर रहे थे।

बोध प्रश्न 1

1) भाट कवियों ने **अग्निकुल** जैसी काल्पनिक कथाओं की रचना क्यों की ? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

2) क्षेत्रीय राजनीतिक प्रणाली के अध्ययन की आवश्यकता के कारणों को बताइए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों पर सही (√) एवं गलत (×) का चिन्ह लगाइएः

   1) राजपूत वंश भारतीय राजनीतिक क्षीतिज पर अचानक प्रकट हुए।

   2) प्रारंभिक मध्यकाल में नवीन सामाजिक समूहों ने क्षत्रिय होने का दावा करना शुरू किया।

   3) अरबों ने छठी सदी इ. में सिंध पर आक्रमण किया।

   4) राजपूत वंशों की उत्पत्ति के संबंध में कोई समस्या नहीं है।

10.4 राजनीतिक सत्ता का वितरण

भारत में राजनीतिक शक्ति का वितरण एक समान प्रतिमान के आधार पर नहीं किया गया। मध्यकालीन पश्चिम भारत में राजनीतिक शक्तियों के उद्भव की प्रक्रिया से स्पष्ट है कि राजनीतिक शक्ति के वितरण को राजतंत्रीय राजनीतिक प्रणाली के अंतर्गत राजवंशीय ढांचे के द्वारा संगठित किया गया था। राजस्थान के चाहमान और दक्षिणी राजस्थान, गुजरात तथा मालवा के परमार जैसे राजपूत वंशों का राजनैतिक इतिहास राजनीतिक शक्ति का वंशों पर आधारित वितरण के उदाहरण को स्पष्ट तौर पर दर्शाता है।

10.4.1 राजपूत वंशों की वृद्धि

मारवाड़ के भाट लेखकों द्वारा रचित बंशावली के अनुसार अबू के परमार वंश के **धारनिवराह** ने स्वयं को नवकोट मारवाड़ का स्वामी बना लिया और बाद में उसने इसको अपने नौ भाइयों में विभाजित कर दिया—एक भाई को मंदौर, दूसरे को अजमेर तथा इस तरह से शेष को अन्य भाग प्रदान कर दिये। मालवा के परमारों के अलावा उनकी चार अन्य शाखाएं (1) आब, (2) भ्निमल, (3) जलौर, (4) वागदा में भी शासन करती थी। इसी तरह से भड़ौंच के चाहमानों के अतिरिक्त प्रतापगढ़ क्षेत्र पर उनकी एक अन्य शाखा शासन करती थीं। इसका प्रमुख प्रतिहार राजाओं का

एक **महासामंत** था। इस **महासामंत** का पूर्वज शाकम्भारि की प्रसिद्ध चाहमान शाखा का सदस्य था। शाकम्भरी के चाहमानों के पास पुष्कर से हर्षा तक का (मध्य और पूर्वी राजस्थान) भू-भाग था, परन्तु यह भू-भाग उनकी शाखाओं (1) नादौल, (2) जालौर, (3) सत्यपुरा, (4) अबू में विभाजित था। अपने पांच शताब्दियों के शासन काल में उन्होंने पश्चिम राजस्थान एवं गुजरात के विशाल क्षेत्रों पर अपना अधिकार बनाये रखा।

प्रारंभिक मध्य काल में चाय नाम का एक और राजपूत वंश था। उन्होंने भीलमाल काठियावाड़ में वंधियार और गुजरात मे अनाहिलपटक जैसी रियासतों पर शासन किया। इसी तरह से गुहिलों ने उदयपुर एवं मेवाड़ पर शासन किया।

इन बड़े वंशों के उप-विभाजनों के साथ-साथ बहुत से छोटे-छोटे वंशों का उदय, प्रारंभिक मध्यकाल में राजपूतों के फैलाव में एक और महत्त्वपूर्ण कारण था। राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के माध्यम से राजपूत वंशों के निर्माण की एक अनवरत प्रक्रिया जारी थी। नवीन वंशों का निर्माण तथा पुरानों का उप-विभाजन जारी था। नवीन वंशों का निर्माण तथा पुरानों का उप-विभाजन राजपूत राजनीतिक ढांचे के अंतर्गत कई तरीकों से जारी रहता था।

10.4.2 वंशीय शक्ति का निर्माण

वंशीय शक्ति के निर्माण एवं सुदृढ़ीकरण का विकास एक समान रूप से न हुआ। राजकुल या वंशीय शक्ति के निर्माण की प्रक्रिया का एक संकेत उन नये क्षेत्रों को बसाना था—जिसका प्रमाण बहुत-सी बस्तियों के प्रसार के रूप में मिलता है। नये क्षेत्रों का बसाना संगठित सैन्य शक्ति के साधनों द्वारा विजित किये गये नये क्षेत्रों के परिणामस्वरूप हो सका। नादौल के चौहान राज्य को सप्ताशत के नाम से जाना जाता था। ऐसा कहा जाता है कि सप्ताश्री के देश का निर्माण एक चौहान सरदार ने अपने राज्य की सीमाओं के सरदारों का वध कर उनके गांवों को प्राप्त करके किया था। पश्चिमी भारत की शक्तियों का क्षेत्रीय प्रसार कुछ क्षेत्रों में कबिलाई बस्तियों को नष्ट करके पूर्ण हुआ। उदाहरण के लिए, मंदौर प्रतिहार कक्कुका जिस स्थान पर जा बसे वह भयंकर था क्योंकि उस स्थान पर आभिरों का निवास था। पश्चिम तथा मध्य भारत में सबरों, मिलों एवं पुलिन्दों जैसी कबिलाई आबादी के दमन से इस तरह के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इसी तरह की कार्यवाहियों को गुहिलों तथा चाहमानों के दृष्टांत में भी पाया जाता है। सातवीं सदी ई. की प्रारंभिक गुहिला बस्तियां राजस्थान के अनेक भागों में पायी गई। कुछ बाद के गुहिलों के नागद-अहर अभिलेखों के अनुसार उनका प्रारंभ गुजरात से हुआ था। भाट कवियों की परंपरा के अनुसार गुहिलों ने अपने दक्षिण राज्यों की स्थापना भीलों के प्रारंभिक कबिलाई राज्यों के स्थान पर की थी।

चौहानों का प्रवाह भी अहिच्छत्रपुर के जंगल देश (शाकम्भारी) की ओर हुआ। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह एक उजाड़ क्षेत्र था। उनके इस ओर विस्तार के कारण यहाँ भी बस्तियां बस गई। दसवीं सदी ई. के एक लेख के अनुसार शाकम्भरी चाहमान वंश के वाकपति प्रथम के पुत्र लक्ष्मण ने अपने कुछ समर्थकों के साथ अभियान शुरू किया और मेदों के विरुद्ध युद्ध किया। ये मेदनदूला के आस-पास के क्षेत्रों में अपनी लूट-खसोट से वहां की जनता को आतंकित किए हुए थे। लक्ष्मण ने इस क्षेत्र के ब्राह्मण स्वामियों को प्रसन्न कर दिया। इसी कारण से उन्होंने उसको नगरों का रक्षक नियुक्त कर दिया। लक्ष्मण ने शनैः शनैः सेना की एक टुकड़ी का गठन कर लिया और मेदों का उनके ही क्षेत्र में दमन कर दिया। मेदों ने यह भी वायदा किया कि वे उन गांवों से दूर रहेंगे जो लक्ष्मण को निश्चित कर का भुगतान करते हैं। वह 2000 घोड़ों का स्वामी बन गया और उसने सरलता से अपने प्रभुत्व का विस्तार किया और नादौल में एक विशाल भवन का निर्माण किया।

एक राजवंश को हटाकर उसके स्थान पर दूसरे राजवंश की सत्ता स्थापित की जा सकती थी और ऐसा जालौर के चाहमानों के दृष्टांत से स्पष्ट भी होता है। जालौर के चाहमान नादौल के चाहमानों की ही एक शाखा थे। नादौल चाहमान अलहण का पुत्र किर्तिपाल उस भूमि के भाग से असंतुष्ट था जो उसको विभाजन के बाद प्राप्त हुआ था। लेकिन यह महत्त्वाकांक्षी पुरुष था और उस समय मेवाड़ की स्थिति ऐसी थी जिससे कि वह उस पर आक्रमण कर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति कर सकता था। परन्तु उसको मेवाड़ पर किए गए आक्रमण में सफलता प्राप्त न हुई तब उसने उस क्षेत्र पर आक्रमण किया जहां पर परमारों का शासन था। उसने जालौर पर अधिकार कर उसे अपने नये राज्य की राजधानी बना लिया। इस तरह से चाहमानों की भड़ौच शाखा उस समय अस्तित्व में आयी जबकि चाहमान सरदार भारतरावद्ध द्वितीय ने भंड़ौंच के गुर्जरों के क्षेत्र पर अधिकार कर राज्य की स्थापना की। अरबों के आक्रमण के कारण इस क्षेत्र में अराजकता पैदा हो गई थी और प्रतिहार नागभट्ट-I ने भड़ौंच के गुर्जरों को उखाड़ने के लिए चाहमान सरदार की सहायता की थी। तब उसने 756 ई. में **महासामंताधिपति** की उपाधि को धारण किया।

इस प्रकार राजवंशीय शक्ति के निर्माण का विकास उन बहुत से रास्तों एवं प्रक्रियाओं के माध्यम से हुआ जो अलग-अलग बंटे हुए नहीं थे और एक दूसरे के साथ संबंध रखते थे।

10.4.3 सामाजिक स्तर में उत्थान की प्रक्रिया

पश्चिमी भारत के राजनीतिक इतिहास से स्पष्ट है कि किसी एक क्षेत्र की एक जाति राजनीतिक शक्ति को सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकती थी। इस क्षेत्र में एक ऐसे राजनीतिक ढांचे की नींव रखी गई जो सदियों तक चलता रहा। कोई भी वंश कृषि को आधार बनाकर आगे बढ़ने का प्रयास करता और समय के साथ-साथ वह अन्य स्थानीय वंशों के साथ मिलकर एक बड़ी क्षेत्रीय शक्ति के रूप में स्थापित हो जाता। उदाहरणार्थ, भूमि के एक विशेष भाग को **गुजरात्र,**

गुर्जर भूमि, गुर्जाराष्ट्र आदि के नाम से जाना जाता। बार-बार जिस भू-भाग का इन नामों से उल्लेख किया गया, संभवतः वह दक्षिणी राजस्थान के साथ जुड़ा भू-भाग था और यही वह आधार था जहां से कई राजकुलों का उद्भव हुआ।

गुर्जर समूह के अंतर्गत स्तरीकरण की प्रक्रिया में ऐसे कई परिवारों का विकास हुआ जिन्होंने राजनीतिक सर्वोच्चता को प्राप्त कर लिया और वे शासक वंश बन गये। सातवीं सदी ई. से उन वंशों की अनेक शाखाएं हो गई जो गुर्जर समूह से बने थे और वे राजनीतिक शक्ति के माध्यम से पश्चिम भारत में व्यापक रूप से फैल गई। गुर्जर प्रतिहारों का इस सामाजिक पृष्ठभूमि में उदय सर्वश्रेष्ठ दृष्टांत का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसा कहा गया कि शक्तिशाली एवं सर्वोच्च सत्ता के ढांचों का उदय स्थानीय कृषि व्यवस्थाओं के आधार पर ही हुआ और इसने अनुकूल राजनीतिक परिस्थितियों में प्रगतिशील गतिशीलता के मार्ग का अनुसरण किया।

10.5 वंशीय शक्ति का सुदृढ़ीकरण

पश्चिम एवं मध्य भारत में राजनीतिक शक्तियों का उदय कुछ निश्चित प्रकार की विशेषताओं से जुड़ा था। आर्थिक स्तर पर भूमि वितरण के प्रतिमान अतिमहत्त्वपूर्ण थे। दसवीं सदी ई. के अंत से चाहमान शासक वंशों के सदस्यों के बीच वितरित की जाने वाली भूमि के प्रमाण मिलते हैं। राजा सिंहराज, उनके भाइयों वत्सराज, विघ्नराज और उनके दो पुत्रों चन्दराज, तथा गोविन्दराज के पास अपनी व्यक्तिगत जागीरें थीं। नादौल के चाहमान राजा भी इस प्रकार के भूमि अधिकारों का आवंटन करते थे तथा उनको ग्रास, **ग्रासभूमि या भुक्ति** कहा जाता था और इस तरह की संपत्तियों के स्वामी राजा, रानी, युवराज या अन्य राजकुमार आदि होते थे। अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा राजस्थान में इस भांति की भूमि आवंटन की प्रथा का कुछ अधिक ही प्रचलन था। शाही परिवार के सदस्यों को इस तरह से भू का यह आवंटन एक प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है और इसका धीरे-धीरे विकास हुआ तथा बाद में इस तरह से यह परंपरा वंशीय सदस्यों को आवंटित की जाने वाली भूमि से जुड़ गई। इसका दूसरा प्रतिमान यह था कि कुछ गांवों से बनी इकाइयों पर भी वंश के कुछ सदस्यों का नियंत्रण होता था और ये इकाइयां मंडल या भुक्ति का भाग होती थीं। इकाई पर संभवतः स्थानीय नियंत्रण होता था। 84 गांवों की इकाई को **चौरासी** कहा जाता था तथा प्रारंभ में इसका प्रचलन सोराष्ट्र में गुर्जर प्रतिहारों के नियंत्रण में था और बाद में इसका विस्तार राजस्थान में भी हुआ। इस प्रकार की अभिव्यक्ति शासक वर्ग के सदस्यों के बीच भूमि वितरण तथा राजनयिक नियंत्रण के रूप में हुई। सन् 1000 ई. से 1200 ई. तक इस तरह की बड़ी-बड़ी जागीरों के स्वामित्व का प्रचलन चाहमान एवं परमार वंशों के राजाओं तथा युवराजों के अधीन था। इस प्रक्रिया का एक दूसरा पक्ष भी था जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक किलेबंदी करने की प्रथा का प्रारंभ हुआ। जहां ये किले एक ओर सुरक्षा के कार्य करते थे वे अपने आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों पर नियंत्रण करने का भी केन्द्र बन गये और इनसे शासक परिवारों को सुदृढ़ीकरण करने की प्रक्रिया में मदद मिली। शासक वंशों के मध्य स्थापित होने वाले वैवाहिक संबंध सामाजिक स्तर पर वंशीय शक्ति की सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया की ओर संकेत करते हैं। वैवाहिक संबंधों द्वारा उन अंतर-वंशीय संबंधों की स्थापना हुई जिसके महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम हुए क्योंकि ये परिवार अधिकतर राजपूत शासक वंश थे। परमारों—राष्ट्रकूटों एवं चाहमान-परमारों के बीच स्थापित होने वाले वैवाहिक संबंधों के अतिरिक्त गुहिला वैवाहिक संबंध भी काफी व्यापक थे। यद्यपि गुहिलों ने अपने वैवाहिक संबंध चालुक्यों से स्थापित किये थे लेकिन उनके वैवाहिक संबंध राष्ट्रकूटों, चेदियों तथा हूणों सहित अन्य राजपूत वंशों जैसे कि परमारों एवं चाहमानों से भी थे। इस तरह से हम देखते हैं कि राजपूत वंशीय व्यवस्था को स्थापित करने में वैवाहिक संबंधों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इन वैवाहिक संबंधों को स्थापित करने में राजनैतिक लक्ष्य अधिक थे क्यों कि उपरोक्त उद्धरणों में पश्चिम भारत के प्रारंभिक मध्य काल के महत्त्वपूर्ण शासक वर्ग थे। अंतर-वंशीय वैवाहिक संबंधों का यह परिणाम हुआ कि सामाजिक राजनीतिक प्रकृति की व्यापक गतिविधियों में सहयोग कायम हुआ क्योंकि इन्होंने विभिन्न राज्यों एवं दरबारों में भिन्न-भिन्न वंशों के सदस्यों की उपस्थिति बढ़ाने में सहायता की।

बोध प्रश्न 2

1) पश्चिम भारत में नई बस्तियों का बनना वंशीय शक्ति के निर्माण की प्रक्रिया का प्रतीक थी। पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

2) दसवीं सदी ई. के बाद के काल में राजस्थान में शाही वंश के सदस्यों के बीच आवंटित की जाने वाली भूमि के दृष्टांत उद्धृत कीजिए।

....

....

3) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही (√) और कौन सा गलत (×) है।

i) जिस किसी भी नये वंश को राजनीतिक सत्ता प्राप्त होती है वह अपनी वैधता सिद्ध करने के लिए सम्मानीय सामाजिक स्तर का होने का दावा प्रस्तुत करता।

ii) शासक वंशों के बीच स्थापित होने वाले वैवाहिक संबंधों का सामाजिक-राजनीतिक प्रकृति की व्यापकतम गतिविधियों से कोई रिश्ता नहीं था।

iii) अंतर-वंशीय विवाहों के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम हुए।

iv) राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करने की प्रक्रिया की राजपूत वंशों के निर्माण में कोई भूमिका नहीं थी।

10.6 राजनीतिक संगठन की प्रकृति एवं ढांचा

प्रारंभिक मध्यकालीन पश्चिम भारत के राजनीतिक भूगोल और गुजरात, राजस्थान तथा मालवा में सदैव राजवंशों की संवृद्धि के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक सत्ता के निर्माण के प्रमाण से स्पष्ट है कि शासक वंश तथा एक विशिष्ट क्षेत्र के बीच सदैव एक समान संबंध नहीं होते थे। राजवंशों की अपने प्रारंभिक सत्ता केन्द्र से बाहर की ओर गतिशीलता के कारण कई नवीन शासक परिवारों की स्थापना हुई। इस तरह के राजवंशों में मेवाड़ के गुहिलों को उदृत किया जा सकता है।

10.6.1 राजनीतिक अस्थिरता

सैन्य शक्ति की गतिशीलता ने न केवल कई शासक परिवारों को सत्ताच्युत किया बल्कि शक्ति के नवीन केन्द्रों एवं ढांचे को पैदा किया। इस संदर्भ में परमारों की मुख्य शाखा **वागद** का उदाहरण दिया जा सकता है। वागद शाखा का अस्तित्व नौवीं सदी ई. के प्रथम दशक से विद्यमान था। उपेन्द्र परमार की मृत्यु के बाद उसके पुत्र ने बांसवार एवं डूगरपुर क्षेत्र में मालवा के एक सामंत के रूप में शासन किया। चाहमानों के समय तक सदियों के लिए **वागद** की यह शाखा वफादार सामंतों के रूप में शासन करती रही। इस शाखा के एक शासक ने स्वयं को मालवा के परमारों से अलग कर लिया और वह 11वीं सदी ई. के उत्तरार्द्ध में एक स्वतंत्र शासक बन गया। 12वीं सदी ई. के प्रारंभ में वागदों ने मालवा राज्य को खो दिया। चामुण्डराज के उत्तराधिकार के बाद इस वागद शाखा के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। तीन दशकों के बाद इस क्षेत्र पर वागद शाखा का एक अन्य शासक शूरपाल शासन करता है। इससे स्पष्ट है कि वागद परमार के शासक को एक गैर परमार शासक द्वारा अपदस्थ कर दिया गया था और यह उनके वंशावली इतिहास से भी मालूम पड़ता है। आगामी 25 वर्षों में परमारों की इस शाखा को उखाड़ फेंका गया और सन् 1179 ई. में वागद क्षेत्र पर एक गुहिल राजा का शासन था। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय बाद इस नवीन गुहिल राज्य पर **महाराजधिराज** की उपाधि धारण करने वाले एक अन्य राजा ने अधिकार कर लिया। ऐसा लगता है कि इस राजा ने स्वयं को अपने-चालुक्य राजा की सहायता से स्थापित किया था।

10.6.2 नौकरशाही का ढांचा

यह विश्वास करना असंभव है कि चालुक्यों, परमारों तथा चाहमान जैसी प्रारंभिक मध्यकालीन राजनीतिक शक्तियाँ अपनी राजनीतिक प्रणालियों में एक शक्तिशाली नौकरशाही के ढांचे के बिना स्थायी सरकारों को दे सकती थी। हमें ऐसे कई अधिकारियों के नामों की जानकारी होती है जो राजकाज के कार्यों में राजाओं की मदद करते थे।

लेखापद्धति सरकार के **करण** (विभाग) नामक नाम का बोध करता है। इसको चालुक्य सरकार के लिए भी लागू किया ज़ा सकता है क्योंकि गुजरात के इतिहास में उपलब्ध व्यापक प्रमाणों से चौलुक्यों के काल के काफी आँकड़े प्राप्त होते हैं। चालुक्यों के ऐतिहासिक प्रमाणों में **करण** शब्द का बार-बार उल्लेख हुआ है। **श्रीकरण** (मुख्य सचिव) का उल्लेख लोकप्रिय शब्द के रूप में उनके अभिलेखों में बार-बार आया है। उनके प्रमाणों में **व्यायाकरण** या लेखा-जोखा विभाग, **व्यापारकरण** या व्यापार के सामान्य निरीक्षण से संबंधित विभाग, निर्यात तथा आयात से कर को एकत्रित करने वाला विभाग और **मन्दायिका-करण** या कर को एकत्रित करने वाला मुख्य सचिवालय जैसे विभाग का विवरण मिलता है। इस तरह के विभाग मंत्रियों के अधीन होते थे और इन मंत्रियों को **महामात्य** कहा जाता था। कुछ अपवादों को छोड़कर इन मंत्रियों के नाम प्रमाणों में उपलब्ध है लेकिन नौकरशाही की वास्तविक प्रकृति एवं कार्यों का आंकलन करना बड़ा कठिन है। **महामात्यों** के अतिरिक्त महामंत्री, मंत्री और सचिव जैसे अधिकारी भी थे। इनकी स्थिति के विषय में प्राप्त सूचनाएं बड़ी अस्पष्ट है और इसी कारणवश इनका उल्लेख कुछ ही अभिलेखों में हुआ है। प्रारंभिक मध्यकाल के पश्चिम भारत के इतिहास में **महासंधिविग्रहिक** का प्रचुर मात्रा में उल्लेख हुआ और वह शांति तथा युद्ध का मंत्री था तथा उसके कर्तव्यों में अनुदान के संयोजन का कार्य भी शामिल था। चौलुक्यों के महामात्य **महासंधिविग्रहिक** के अधीन **श्रीकरण** तथा **मुद्रा** (वह विभाग जो पासपोर्ट को जारी करता तथा आयातीत सामानों से कर एकत्रित करता था) विभाग भी थे। **महाक्षपतलिक** नाम के एक अन्य अधिकारी का उल्लेख हुआ है और इस अधिकारी के अधीन लेखा-जोखा विभाग एवं प्रमाण विभाग थे। यह अधिकारी राज्य की आमदनी एवं खर्च का पूर्ण लेखा-जोखा रखता था। परमार प्रशासन के दौरान यह अधिकारी भूमि अनुदानों को पंजीकृत करता था।

महामंत्री या **महाप्रधान** का अर्थ मुख्य मंत्री या प्रधानमंत्री से था और इसका बहुत अधिक महत्त्व था। इसके अधीन शाही मोहर होती थी और यह सभी विभागों का निरीक्षण करता था। दण्डनायक या सेनापति अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारी था। यह मुख्यतः सेना का अधिकारी होता। चाहमान साक्ष्यों से स्पष्ट है कि अश्वसेना के अधिकारीगण या बालाधिपति इस अधिकारी के अधीन होते थे और ये अधिकारी नगर से बाहर स्थित सैनिक छावनियों के उच्च अधिकारी होते। संपूर्ण प्रशासन पर राजधानी स्थित **बालाधिकरण** नामक विभाग का नियंत्रण होता था।

केन्द्रीय अधिकारी कहे जाने वालों की सूची में **दूतक** नाम का अधिकारी भी शामिल था और इस अधिकारी का कार्य शासकों द्वारा दिए गये अनुदानों को स्थानीय अधिकारियों को प्रेषित करना था। स्थानीय अधिकारी इन अधिकार-पत्रों को तैयार करते थे और इनको संबंधित लोगों को देते थे। **महाप्रतिहार** और **भण्डारिका** (गोदामों का अधिकारी) के नाम भी सरकारी अधिकारियों की सूची में थे।

10.6.3 वंशात्मक राज्य एवं सामंतीय राजनीति

गुप्त काल से ही राजनीतिक प्रणालियों की अंतरः संबंधता एक विशेषता थी और यह राज्य समाज के समस्तरीय प्रसार का परिणाम थी। जाति पर आधारित शासक वंशों सहित भिन्न-भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में ऐसे तत्त्वों का सम्मिश्रण था जो प्रारंभिक मध्यकालीन सभी प्रकार के राजनीतिक ढांचों में निहित थे। पश्चिम तथा मध्य भारत के इस समय के राजनीतिक संगठन इसके अपवाद न थे।

सबसे पहले हम राजवंश पर आधारित राज्य से संबंधित सामग्री के विषय में चर्चा करेंगे (देखें इकाई 9.4.4)। यह राजनीतिक सत्ता के परिवेश में वंशीय शक्ति का सुदृढ़ीकरण न था। बल्कि यह भू-स्वामित्व का गहन सवाल था। कई लोग ऐसा सोचते हैं कि शासक परिवार के सदस्य मात्र भूमि पर अधिकार करना चाहते थे। परन्तु इस समस्या का मूल स्वरूप एवं लक्ष्य कुछ अन्य थे। हम देखते हैं कि सरकार को संचालित करने का कार्य शनैः शनैः भू-स्वामित्व के प्रश्न से जुड़ गया। गुर्जर-प्रतिहारों के शासन में हम देखते हैं कि अनेकों भू-क्षेत्र चाहमान, गुहिला एवं चालुक्य वंशों के सरदारों के अधीन थीं। गुर्जर प्रतिहार वंश के एक अन्य सरदार मथनदेव ने **स्वभागवप्त** (स्वयं का भाग) के रूप में अपने अनुदान को प्राप्त करने के लिये दावा प्रस्तुत किया। सन् 1161 ई. की **राजपुत्र कीर्तिपाल** के नादौल अभिलेखों में 12 गाँवों के एक ऐसे समूह को उद्धृत किया गया है जिनको एक छोटे राजकुमार ने एक अन्य राजकुमार के शासन के दौरान प्राप्त किया था। यशो वर्मन की कलवण पट्टिकाओं के अनुसार (परमार शासक राजा भोजदेव के समय का) उस समय एक ऐसा सरदार था जिसने अपने स्वामी से 84 गाँवों के अधिकार पत्र को प्राप्त किया था (देखें इकाई 11.4.2)।

जिस तरह से चाहमानों एवं गुर्जर-प्रतिहारों में भूमि अनुदान को वंशीय आधार पर बहुत अधिक दिया जाता था, परमारों के बीच भूमि अनुदान को वंशीय आधार पर करने की परम्परा इस तरह से काफी कम थी। लेकिन परमार प्रमाणों में चाहमानों की अपेक्षा ग्राम समूहों को अधिक उद्धृत किया गया है। 12 की इकाइयों में ग्राम समूहों या फिर गुणात्मक रूप में कम से कम सात बार उद्धृत किया गया है। सन् 1017 ई. का एक परमार अभिलेख 52 ग्रामों के एक ऐसे जिले का उल्लेख करता है जो न तो 12 के गुणात्मक या 16 के गुणात्मक प्रतिमान में फिट होता है। लेकिन इसका ठीक-ठीक तौर पर निश्चय भी नहीं किया जा सकता।

वंशीय प्रभावों की व्यापकता या फिर अपवाद के बावजूद राजवंशीय राज्य कहे जाने वाले राज्यों का मूल आधार प्रधानतः भूमि के स्वामित्व की प्रकृति ही था। जैसा कि इकाई 8.3.3 में इस ओर पहले ही संकेत दिया गया कि जहाँ तक शाही वंशीय राज्य या फिर एकात्मक राजनीतिक संगठन का प्रश्न था उसने राजनीतिक ढाँचें के किसी अन्य वैकल्पिक भौतिक आधार को प्रस्तुत नहीं किया। ऐसा न होने पर कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पश्चिम एवं मध्य भारत के इन राज्यों में सत्ता के विभिन्न केन्द्र बिन्दु या स्तर उसी तरह से थे जैसे कि उस समय की बड़ी-2 राजनीतिक प्रणालियों में सामान्य तौर से विद्यमान रहते थे। इस तरह से इसके द्वारा सामन्तीय राजनीतिक प्रणाली की परिकल्पना की पुनः वैधता सिद्ध होती है।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि सामन्तीय व्यवस्था सम्पूर्ण भारत में एक समान न थी। लेकिन इन सबके बावजूद इस सामन्तीय व्यवस्था में इस काल में सभी तरह के भू-स्वामी कुलीनों का वर्चस्व कायम था।

पश्चिम तथा मध्य भारत के इन राज्यों में वे सभी क्षेत्र शामिल थे जो उनके सामन्तों के नियंत्रण में थे। इन सामन्तों को साधारणतः **मण्डालिका** कहा जाता था। परन्तु वे भी कभी-कभी **महाराजधिराज, महामण्डेलेश्वर, महामण्डिलिका, महासामन्त,** और **सामन्त** जैसी उपाधियों को धारण करते। चालुक्यों के महत्त्वपूर्ण सामन्त राजकुमार, आबू के परमार एवं जालौर के चाहमान थे। इन से कम महत्त्वपूर्ण सामान्त राजा जगमल एवं सोमेशवर परमार थे। ठीक इसी तरह से विशेषकर चाहमानों के नदौल एवं जालौर राज्यों में भूमि पर बिचौलिये भू-स्वामियों का अधिकार था और इन भू-स्वामियों को **ठाकुर, रणका,** और **भोक्ता** कहा जाता था। इन को भू-स्वामित्व का अधिकार इस शर्त के साथ प्रदान किया जाता था कि जब भी राजा को आवश्यकता होगी तब वे सैनिकों की एक निश्चित संख्या को भेजेंगे।

परमार शासकों के अधीन सामन्तीय सरदारों, अधिकारियों तथा राजकुमारों की निम्नलिखित श्रेणियां थीं :

1) कुछ अधिकारियों को अपनी बहुमूल्य सेवा के लिये राजा के द्वारा भूमि को उपहार स्वरूप प्रदान किया जाता।
2) जिन्होंने अपने उत्कर्ष के दौरान स्वतंत्र क्षेत्रों की स्थापना की और मुख्य शाखा की सर्वोच्चता को स्वीकार किया। इस वर्ग में वगद के तथा किरादू के परमार आते थे।

3) ऐसे सामान्त जिन्होंने परमारों के कठिन दिनों में केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध शक्ति के बल पर स्वयं को स्वतंत्र राज्य या जागीर का स्वामी घोषित कर लिया था। इस तरह की श्रेणी में महाकुमार जैसे परमार शामिल थे। ये सहायक उपाधियों को धारण करते लेकिन इन्होंने व्यवहारिक तौर पर स्वयं को स्वतंत्र बनाये रखा।

4) ऐसे सामन्त जिनको परमारों के द्वारा पराजित कर दिया गया था परन्तु उन्होंने परमारों की अधीनता को स्वीकार कर लिया और उनको सामन्त का दर्जा प्रदान किया गया था।

परमारों के अर्णबुदमण्डल और महाकुमार जैसे बड़े सामन्तों को पर्याप्त आन्तरिक स्वापत्तता प्राप्त थी। वे अपने उप-सामन्तों का निर्माण कर सकते थे और अपने अधिकारियों की नियुक्ति भी कर सकते थे। सामन्त सरदारों के लिये यह भी सम्भव था कि अपने ऊपर निर्भर रहने वाले लोगों को भूमि को वितरित कर सकते थे। परमार शासकों के अन्तर्गत लगभग सभी सामन्तीय राज्यों में **ठाकुर** सामन्त सरदारों की सेवा करते थे। सामन्त करों का निर्धारण करते, गाँवों का विभाजन और कुछ निश्चित लोगों को कर से मुक्त कर सकते थे। भूमि अनुदानों की यह परम्परा और इसके साथ जुड़े आर्थिक एवं प्रशासनिक अधिकारियों को सहायक सामन्तीय व्यवस्था कहा जाता है। इस अवधारणा को पुष्ट करने के लिये गुर्जर-प्रतिहारों के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इस परम्परा का निर्वाह प्रतिहारों के प्रत्यक्ष अधीन क्षेत्रों तथा सामन्तों के अधीन क्षेत्रों दोनों में होता था। चौलुक्यों के द्वारा गुजरात में सेवाओं के लिये जो अनुदान प्रदान किये गये थे उनसे भी इस सहायक-सामन्तीय व्यवस्था की पुष्टि होती है। एक सहायक सामन्त सम्भवतः भीमदेव द्वितीय के अधीन एक बनिये ने सिंचाई के लिये एक कुंए तथा इस से जुड़ी पानी की नालियों का निर्माण कराया और इस कार्य के लिये उसने प्रजावत जाति के एक सदस्य को भूमि का अनुदान दिया जो सम्भवतः एक कारीगर रहा होगा। सहायक सामन्तीय व्यवस्था परमार राज्य में किस ढंग से सक्रिय थी इसके विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। परन्तु समय के साथ-साथ सामन्तीय व्यवस्था की अभिव्यक्ति पदों के रूप में हुई और इस ने राजनीतिक पदानुक्रम के निर्माण की विशेषता को प्राप्त किया और इस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व **रणका, रौतका, ठाकुर, सामन्त, महासामन्त** आदि जैसे पदों के द्वारा किया जाता था।

अधिकारियों को राज्य के द्वारा प्रदान किये जाने वाले अनुदानों की मात्रा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न-भिन्न थी। जहाँ हमें एक ओर परमार शासकों के आधा दर्जन अधिकारियों के पदों का पता चलता है, वहीं उनमें से कुछ ही भूमि अनुदानों को प्राप्त कर पाये परन्तु, हमें ऐसा कोई दृष्टांत उपलब्ध नहीं होता जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उनमें से किसी को भी 11वीं सदी ई. में यह अनुदान प्राप्त हुआ हो। लेकिन गुजरात के चौलुक्यों के अधीन सामन्तों एवं अधिकारियों को बड़े-बड़े क्षेत्रों का अनुदान दिया गया। चौलुक्यों की सन् 1200 ई. एवं 1300 ई. के ताम्र पत्रों तथा लेखापद्धति से प्राप्त आंकड़ों की तुलना करने पर हम पाते हैं कि सामन्त एवं उच्च अधिकारी गण शनैः शनैः एक दूसरे के अन्दर मिश्रित होते गये। 11वीं एवं 12वीं सदी ई. में मुख्य अधिकारियों को वेतन का भुगतान स्थायी रूप से एवं पूर्णतः करों से किया जाता था। इस प्रकार कलचुरी राज्य के **पट्टाकिल,** तथा **दुस्तसाध्य** और चाहमानों के **बार .वप** अधिकारीगण ऐसे वेतन को प्राप्त करते थे। 12वीं सदी के अन्त तथा 13वीं सदी ई. के प्रारंभ के चाहमान अभिलेखों में सामन्तों, शाही अधिकारियों, वन अधिकारियों, सिपाहियों आदि का विवरण हुआ है और इन अधिकारियों को जो अतिरिक्त आय होती वे गाँव को उपहारों के रूप में रूपान्तरित कर देते थे। इस तरह के प्राप्त किये गये कुछ अधिकारों का उल्लेख इन अभिलेखों में हुआ है।

सामन्तों की अपने राजा के प्रति वित्तीय एवं सैनिक जिम्मेदारियां थी। सामान्यतः सामन्तों की सत्ता कुछ निश्चित शर्तों के पूरा करने पर निर्भर करती थी या यों कहें कि उनकी सत्ता इन शर्तों के पूरा करने से बंधी थी। जैसे कि उनको अपने राजा को आवश्यक अवसर पर सिपाहियों की एक निश्चित संख्या की आपूर्ति करनी होती थी। बगद के परमारों ने मालवा के परमारों की साम्राज्य स्थापना के लिये एक बार से अधिक युद्ध में भाग लिया। आबू, किरदू तथा जालौर के परमार सरदार गुजरात के चौलुक्यों के सामन्त थे और उन्होंने चौलुक्यों के लिये कई बार अपने प्राणों का बलिदान किया था। लेकिन इन सबके बावजूद सामन्त सरदार स्वतंत्र होने के लिये उत्सुक रहते थे और जब कभी उनको अवसर प्राप्त होता तब वे ऐसा कर भी देते। इस तरह के मामलों में आश्रयदाता एवं सामन्तों के बीच संबंध ताकत के आधार पर कायम रहते और कोई भी इसका प्रयोग कर सकता था। उदाहरणार्थ, मेवाड़ के गुहिलों ने परमारों की अधीनता को उस समय स्वीकार किया था जबकि वाक्पति-II ने उनको पराजित कर दिया। लेकिन भोजप्रथम की मृत्यु के बाद जो अराजकता की स्थिति पैदा हुई उसके दौरान उन्होंने अपनी स्वतंत्र स्थिति को स्थापित करने का प्रयास किया। इसी तरह से चाहमान कातुदेव ने अपने चौलुक्य राजा सिद्धराज के शासन काल के अन्तिम वर्षों में स्वतंत्र होने का प्रयास किया। इसी कारणवश चौलुक्य राजकुमार ने उसको उसकी जागीर से बेदखल कर दिया और इस क्षेत्र में एक दंडनायक की नियुक्ति करने नदौला को अपने प्रत्यक्ष प्रशासन के अधीन कर लिया। कुमार पाल ने विद्रोही राजकुमार विक्रम सिंह को आबू से हटा दिया और उसके भतीजे यशोधावाल को नियुक्त कर दिया। यशोधावाल के पुत्र एवं उत्तराधिकारी धार वर्ष ने चौलुक्य राजाओं की तीन पीढ़ियों तक विशेष सेवा की। लेकिन इन सबके बावजूद वह भी भीम II के विरुद्ध हो गया और उसको ताकत के बल पर चौलुक्य राजा ने विजयी बना लिया या फिर उसने स्वयं राजा के सम्मुख समर्पण कर दिया।

सामन्तीय राजकुमार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य दुश्मन के विरुद्ध अपने आश्रयदाता की सहागता करना था। कभी-कभी सामन्त नजराना प्राप्त करने के लिये नये-नये क्षेत्रों को विजित कर लेते थे और राजकुमार इन क्षेत्रों को सामन्तों के नियंत्रण में कर देते थे। एक ऐसा अभिलेख प्राप्त हुआ है जिससे यह मालूम पड़ता है कि नये राजा के सिंहासनारूढ़ होने पर सामन्त नये राजा के प्रति वफादारी की शपथ लेता था और राजा इसके बदले सामन्त के अधिकार को मान्यता

प्रदान करता। सामन्तों को अपने स्वामी को नकद या सामान के रूप में नजराना भी देना होता था। इन सबके बावजूद इन शर्तों को विभिन्न श्रेणी के सामन्तीय सरदारों के द्वारा पूरा करने के लिये कोई कठोर नियम न थे। सामन्त एवं राजा के बीच के संबंध सामान्यतः परिस्थितियों पर निर्भर करते थे और अपेक्षाकृत ये संबंध एक दूसरे के प्रति ताकत पर निर्भर थे। गुजरात के चौलुक्यों के अंतर्गत आबू के परमारों या नादौल के चाहमानों ने काफी बड़े प्रदेश पर शासन किया और उनकी अपने प्रशासन की व्यवस्थायें थीं।

राजनीतिक परिस्थितियों की अस्थिरता सामन्तीय व्यवस्था का ही एक हिस्सा थी। सामन्तीय अनुबंधों की शक्ति अक्सर राजा के व्यक्तित्व पर निर्भर करती थी। जब कभी राजा लोग दूर-दराज के क्षेत्रों के लिये युद्ध अभियान पर जाते थे तब उनको ऐसे विश्वसनीय योग्य सेनापति की आवश्यकता होती थी जिसको क्षेत्रीय प्रशासन का भी अनुभव हो और यह योग्यता सामन्ती सरदारों में होती थी। राजा एवं सहायक के बीच के व्यक्तिगत संबंध इस पर निर्भर करते थे कि सहायक एक या दो पीढ़ियों तक क्षेत्रों पर नियंत्रण रखने के लिये काफी शक्तिशाली होना चाहिये था। लेकिन समय के चलते ये संबंध कमजोर पड़ जाते थे और सामन्त सरदार स्वतंत्र होने के लिये पर्याप्त कोशिश करते थे। अक्सर सामन्तों के कोई भी स्थायी अनुबंध न थे और अगर कोई शक्तिशाली आक्रन्ता उनको विशेष अधिकार देने को तैयार हो जाता तब वे अपनी निष्ठा को इस नये स्वामी के साथ रूपान्तरित करने के लिये तत्पर हो जाते थे।

बोध प्रश्न 3

1) अनुच्छेद (अ) में **लेखापद्धति** से कुछ शब्द और (ब) में वे शब्द दिये गये हैं जो कुछ विभागों से संबंधित थे। (अ) एवं (ब) में समरूप शब्दों को मिलाइये।

अ	ब
1) **व्यायाकरण**	(अ) मुख्य सचिवालय
2) **व्यापारकरण**	(ब) लेखा जोखा विभाग
3) **श्रीकरण**	(स) व्यापार का निरीक्षण करने वाला विभाग
4) **मन्दापिकरण**	(द) करों को वसूल करने वाला विभाग

2) सामन्तीय सरदारों के कार्यों एवं शक्तियों को 10 पंक्तियों में लिखिये।

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित कथनों पर ठीक (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाइये :

i) सामन्तीय व्यवस्था एक समान श्रेणी न थी एवं उसके अंतर्गत विशाल पदों का क्षेत्र शामिल था।

ii) केन्द्रीयकरण राज्य ढाँचे की एक आवश्यक विशेषता है।

iii) सामन्तीय लोग अपने स्वामियों के प्रति स्थायी तौर पर अनुबंधित थे और अपनी विश्वसनीयता को दूसरों को रूपांतरित नहीं कर सकते थे।

10.7 सारांश

आठवीं सदी ई. के प्रारम्भ में पश्चिम तथा मध्य भारत में एक ऐसे राजनीतिक ढांचे का विकास हुआ जिसके अंतर्गत नये विभिन्न सामाजिक वर्गों ने नये क्षेत्रों को आबाद करने जैसे साधनों के माध्यम से राजनीतिक शक्ति को प्राप्त किया। राजपूत जाति का आधार राजनीतिक संगठन की सत्ता थी और इसके विकास के प्रतिमान से स्पष्ट है कि पश्चिम भारत की सीमाओं से बाहर इसमें भटकाव उत्पन्न हो गया था। इन जातियों ने अपनी वैधता को प्राप्त करने के लिये क्षत्रिय वर्ण को धारण किया और ऐसा केवल पश्चिम भारत की राजनीतिक शक्तियों ने ही नहीं किया अपितु प्रारम्भिक मध्य काल के भारत में सभी राजनीतिक शक्तियों ने ऐसा करने के प्रयास किये। स्वयं को क्षत्रिय साबित करने की वैधता को प्राप्त करने के बाद सामन्तीय स्थिति से स्वतंत्र स्थिति में रूपांतरित होने वाले काल में पश्चिम तथा मध्य भारत की इन शासक जातियों ने लम्बी-चौड़ी वंशावली को बनाया। उन्होंने भूमि वितरण एवं क्षेत्रीय व्यवस्था के द्वारा अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ किया। इस क्षेत्र की राजनीतिक प्रणाली की अन्य विशेषताएँ निम्न प्रकार से थीं —

- नौकरशाही का संगठन अपने राजनीतिक ढांचों में विभिन्न स्वरूपों से जुड़ा था और इस राजनीतिक ढांचे के सत्ता के विभिन्न केंद्र थे।
- स्वामी और अधीनस्थ के संबंधों का प्रभुत्व था।
- स्थानीय राजनीति विशालतम राज्य की राजनीति के साथ एकीकृत थी।
- सामन्तों की स्थिति का महत्त्वपूर्ण अंग भूमि का स्वामित्व था।
- भूमि का कुछ निश्चित भाग पदों से जुड़ा था जिसके अन्तर्गत राजनीतिक प्रशासनिक भूमि, कोष एवं सेनाएं शामिल थीं।
- प्रशासन एवं वित्त की व्यापक शक्तियां सामन्तों एवं अधिकारियों के पास थीं जिससे कि सहायक सामन्तीय व्यवस्था का प्रसार हुआ।

10.8 शब्दावली

बालाधिय : एक सैनिक अधिकारी होता था और इसके अधीन कस्टम विभाग था।

चौरसिया : 84 गाँवों का स्वामित्व।

दुस्तसाध्य : पुलिस अधिकारी जिसके अधीन प्रशासन का कार्य था।

गोत्रक चर : गोत्र की घोषणा करना।

मलेच्छ : अरबों, तुर्कों तथा विदेशियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया।

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अग्निकुल पौराणिक कथा की रचना भाट लेखकों के द्वारा अपने आश्रयदाताओं की श्रेष्ठ वंशावली के लिये की गई। उनकी उत्पत्ति की शानदार व्याख्या भी की गई (देखें भाग 10.3)।

2) देखें भाग 10.1

3) i) × ii) √ iii) × iv) ×

बोध प्रश्न 2

1) वंशों आदि के प्रसार के लिये औपनिवेशकरण तथा नये क्षेत्रों का अधिग्रहण किया (देखें 10.4.2)।

2) देखें भाग 10.5

3) i) √ ii) × iii) √ iv) √

बोध प्रश्न 3

1) i) ब ii) स iii) अ iv) द

2) आपका उत्तर उपभाग 10.6.5 में उद्धृत शक्तियों तथा कार्यों पर आधारित होना चाहिये।

3) i) √ ii) × iii) ×